स्कूलों में अनुशासन, समता और एकता के नाम पर गणवेश के विचार ने गहरी जड़ें जमा ली हैं। आज के समय में इसके बिना स्कूल की कल्पना कर पाना लगभग नामुमकिन-सा हो गया है। शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के नाम पर अब शिक्षकों के लिए गणवेश बहस का मुद्दा बन गई है। कई प्रान्तों में इस पर विचार किया जा रहा है। महाराष्ट्र में इसे लागू करने की कवायदें चल रही हैं तो उड़ीसा भी इस पर सोच रहा है। लेखक का मानना है कि शिक्षकों के लिए गणवेश का विचार शिक्षकों पर अविश्वास और नियंत्रण कायम करने की मंशा का परिणाम है। उनका कहना है कि शिक्षा की गिरती गुणवत्ता के लिए शिक्षकों को दोषी ठहराने और उन पर नियंत्रण पुख्ता करने के लिए गणवेश जैसे औजारों को लगाने के बजाय शिक्षकों के प्रति सामाजिक और प्रशासनिक दृष्टिकोण में बदलाव लाने की जरूरत है।

किशोर दरक

गणित एवं विज्ञान शिक्षक और अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। शिक्षा के सामयिक मुद्दों पर मराठी समाचार पत्रों में लगातार लिखते हैं।

अध्यापक क्या पहने?

ठाणे, महाराष्ट्र के सोलापुर तथा नासिक जिलों की जिला परिषदों ने अपने शिक्षकों (केवल सरकारी शालाओं के शिक्षकों) के लिए एक खास किस्म का गणवेश पहनना अनिवार्य कर दिया है। पुरुष शिक्षकों को एक खास रंग की पूरी आस्तीन की कमीजें व पतलूने पहनना जरूरी है और शिक्षिकाओं के लिए साड़ी-ब्लाउज। मुस्लिम समुदाय की शिक्षिकाओं को सलवार-कमीज पहनने की 'अनुमति' है। गणवेश की घोषणा के समय अधिकारियों ने जो कारण बताए उनमें शिक्षकों में अनुशासनहीनता को कम करना, एकता तथा सामूहिकता का भाव पैदा करना, शिक्षकों के लिए एक नई पहचान विकसित करना, शिक्षकों को अधिक उत्साही बनाना, छात्र-शिक्षक संबंध को अधिक स्नेहपूर्ण बनाना, आदि शामिल थे। स्कूलों से शिक्षकों की अनुपस्थिति तथा स्कूल समय के दौरान स्कूल के सिवा अन्य स्थानों

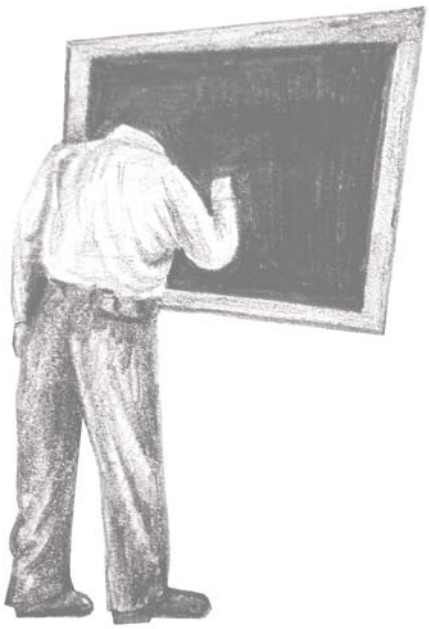

पर मौजूदगी ही वे मुख्य सरोकार थे जिनके चलते यह बाध्यता जन्मी।[1]

सोलापुर जिला परिषद् के पत्र के अनुसार इस गणवेश को खरीदने और उनके रख-रखाव का खर्च शिक्षकों को वहन करना था। अगर कोई शिक्षक इसके सिवाय किन्हीं अन्य वस्त्रों में पाया जाए तो उसके वेतन में से एक दिन का वेतन दण्ड स्वरूप काटने का प्रावधान था। शिक्षक संघों को इस निर्णय की सूचना दे दी गई है, पत्र ने बताया।[2] वीरेन्द्र सिंह, जो सोलापुर जिला परिषद् के मुख्य कार्यकारी अधिकारी हैं, ने दावा किया कि गणवेश शिक्षकों के शैक्षणिक कार्य की गुणवत्ता में इजाफा करेगा तथा कार्यवाहक जिला शिक्षा अधिकारी ने कहा कि गणवेश शिक्षकों का दर्जा बढ़ाएगा।[3] संक्षेप में गणवेश शिक्षकों को व्यवस्थित, स्वच्छ बनाता है, अतः उनके काम की गुणवत्ता बढ़ती है।

जहां तक छात्रों का सवाल है गणवेश स्कूली वास्तविकता रही है। छात्रों के लिए गणवेश का विचार हमने इस कदर आत्मसात किया है, उसे विरासत में पाया है कि हम बिना किसी प्रकार के गणवेश के किसी स्कूल जाने वाले बालक-बालिका की कल्पना ही नहीं कर सकते। गणवेश को अनुशासन का रक्षक, छात्रों में एकता रचने वाला, आदि-आदि कहा गया है। हमारे समाज में गणवेश की अनिवार्यता की जड़ें इतनी गहरे समाई हुई हैं कि सोलापुर के कुछ शिक्षकों को लगा कि अगर स्कूलों में गणवेश 'नैसर्गिक' है तो शिक्षकों के लिए गणवेश विद्यार्थियों के लिए गणवेश का विस्तार मात्र है या फिर, यह प्रणाली की 'पेशेवर' आवश्यकता ही है। गणवेश के बिना हम स्कूल की कल्पना नहीं कर सकते और जो स्कूल गणवेश की अनिवार्यता में छूट देते हैं उन्हें हम प्रायोगिक/वैकल्पिक स्कूल मानते हैं, जहां अनुशासनहीनता को झेल लिया जाता है।

दुनिया भर में जो आधुनिकता पर शोध करने वाले हैं, उन्होंने स्कूलों, बंदीगृहों, अस्पतालों, कारखानों, शरण स्थानों, आदि जैसे आधुनिक संस्थानों के बीच साम्य की ओर संकेत किया है। इन सभी संस्थानों में जो एक बात समान मिलती है, वह है गणवेश की अनिवार्यता। फ्रांसीसी दार्शनिक-समाजशास्त्री मिशेल कॉल्ट स्कूलों को भिन्न प्रकार के बंदीगृह ही मानते हैं और गणवेश की अनिवार्यता भी इसी ओर संकेत करती है। किसी पेशे की 'स्वाभाविक' आवश्यकता के रूप में गणवेश की एक लम्बी परंपरा रही है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में जब उद्योगों में साक्षर तथा कुशल श्रमिकों की मांग बढ़ी तो यूरोप में स्कूलों की संख्या भी बढ़ने लगी। उद्योग की मांग की आपूर्ति की तैयारी में

1. सोलापुर टुडे, सकाल (मराठी अखबार) सोलापुर, 30 जून 2010
2. जिला परिषद् सोलापुर पत्र संख्या : जेड़पीएस/एज्यु./मीटिंग/117/10, तिथि 10.06.2010
3. सोलापुर टुडे, सकाल (मराठी अखबार), सोलापुर 30 जून, 2010

स्कूलों ने भी कुछ आचरण अपना लिए, जैसे-गणवेश, समय सारिणी, घंटियां बजाना और बच्चों से एक साथ एक ही काम करवाना -- जो कारखानों से अपनाए गए थे। स्कूल में इस प्रकार का सामाजीकरण संभवतः शिक्षार्थियों को 'नौकरी देने योग्य' बनाता था।

गणवेश के विचार की कल्पना के समय से ही यह माना जाता था कि एक ही तरह के कपड़े पहनवाने से अनुशासन का एक समूह का सदस्य होने का भाव शिक्षार्थियों में जगाया जा सकेगा। परन्तु शोधकर्ताओं का मानना है कि बच्चों को अनुशासित करने के तमाम उपायों में एक गणवेश भी है। माना यह जाता है कि स्कूल का प्राथमिक दायित्व बच्चों को अनुशासित करना है। आज भी गणवेश न पहनने पर छात्रों को दण्डित किया जाता है और कई बार तो यह दण्ड शारीरिक दण्ड भी होता है। स्कूलों द्वारा गणवेश का यह आग्रह उस डेढ़ सौ साल पुरानी 'परंपरा' के कारण है, जिसमें स्कूल एक खास तरह के सामाजीकरण की चेष्टा करते थे।

स्कूल जाने वाले बच्चे जल्दी ही यह स्वीकार कर लेते हैं कि स्कूली दुनिया में उनके लिए गणवेश पहनना अनिवार्य है और सभी वयस्कों को जैसे उनके शिक्षक और माता-पिता को, अपनी पसंद के कपड़े पहनने की आजादी है। गणवेश बच्चों को 'बिना जाहिर विरोध के' बाहरी सत्ता को स्वीकार करना सिखाता है। ऐसी सत्ता को जो स्व तथा परिवार के सदस्यों से बाहर की है। स्कूल में प्रवेश करने के भी पहले बच्चों को यह संदेश दिया जाता है कि स्कूल ऐसे स्थान हैं जहां उन्हें ढंग का बर्ताव करना चाहिए और गणवेश इसमें एक कठोर संदेशवाहक की भूमिका निभाता है। जब यह संदेश आत्मसात कर लिया जाता है तो सामाजीकरण अनुशासित करने के समान ही आसान बन जाता है। मैकवेह जैसे शोधकर्ता सुझाते हैं कि गणवेश निर्धारित कपड़ों से कहीं अधिक होता है। ''छात्र कर्ता हैं और गणवेश वह माध्यम है जिसके द्वारा वैचारिक संस्थागत ताकतें पराधीनता निर्मित करती हैं।''[4]

शिक्षकों के लिए गणवेश के पक्ष में दिए गए तर्क वैसे ही हैं जैसे विद्यार्थियों के लिए गणवेश के विषय में दिए जाते हैं। अन्य कई देशों की तरह भारत में भी शिक्षक अफसरशाही के पदानुक्रम में सबसे निचली पायदान पर होते हैं। आधुनिक शिक्षा जब से प्रारंभ हुई, तब से इसने शिक्षकों को निचला दर्जा ही प्रदान किया है। शिक्षक को निर्देशों का चुपचाप पालन करने वाले के रूप में देखा जाता है, जो 'आधिकारिक' पाठ्यचर्या को लागू करे और सिर्फ तब ही अपना मुंह खोले जब अधिकारी ऐसा चाहते हों। शिक्षक की यह छवि अंग्रेजों ने ही नहीं बनाई बल्कि इसे गढ़ने में उन स्वदेशी लोगों ने भी अहम् भूमिका अदा की है जो राष्ट्रवादी होने का दावा करते हैं और अध्यापक के काम को राष्ट्र निर्माण की गतिविधि के रूप में देखते हैं। उदाहरण के लिए, 1890 में विनायक कोंडदेव ओक ने, जो स्कूल निरीक्षक व शिक्षक प्रशिक्षक भी थे, विनम्रता, बड़ों का सम्मान, आदि को शिक्षकों के गुण बताया था।[5] ठीक इन्हीं गुणों ने शिक्षक के काम को वाहक का काम बना डाला। शिक्षक केवल एक ही स्थान पर अपनी सत्ता का प्रदर्शन कर सकता है, वह है कक्षा जहां उस सत्ता के दर्शक और प्राप्तकर्ता मूक विद्यार्थी हैं। शिक्षक के काम को अधिकतम एक आज्ञाकारी तकनीकविद् का काम माना जाता है, न कि एक बौद्धिक गतिविधि। अध्ययनों ने दर्शाया है कि शिक्षक संबंधी आधुनिक विचार का कल्याणकारी राज्य के विकास के

गणवेश बच्चों को 'बिना जाहिर विरोध के' बाहरी सत्ता को स्वीकार करना सिखाता है। ऐसी सत्ता को जो स्व तथा परिवार के सदस्यों से बाहर की है। स्कूल में प्रवेश करने के भी पहले बच्चों को यह संदेश दिया जाता है कि स्कूल ऐसे स्थान हैं जहां उन्हें ढंग का बर्ताव करना चाहिए और गणवेश इसमें एक कठोर संदेशवाहक की भूमिका निभाता है।

4. मैकवे, बी.जे., ''वेयरिंग आइडिकॉलजी : स्टेट स्कूलिंग एण्ड सेल्फ-प्रेजेन्टेशन इन जापान, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू यॉर्क 2000
5. ओक, वी.के., शिक्षान्स् थोड़ा सा बोध (भरणि), प्रकाशक अज्ञात, 1890

साथ घनिष्ठ संबंध हैं।[6]

इस पृष्ठभूमि में शिक्षक के लिए गणवेश के विचार को जांचना रोचक होगा जिसे अनिवार्य बनाया जा रहा है।

पुरुष शिक्षकों को निर्धारित रंगों की पतलूनें व कमीजें पहननी हैं जबकि शिक्षिकाओं को निर्धारित रंग के साड़ी-ब्लाउज। राज्य न केवल स्वयं को कैसे प्रस्तुत करता है, वयस्कों की आजादी का हनन कर रहा है, बल्कि व्यक्तिगतता, सांस्कृतिक अंतर तथा समाज में विविधता की धारणा को भी नकार रहा है। अगर हम परंपरागत मराठी वेशभूषा को देखें तो पुरुष धोती-कुर्ता पहनते हैं और स्त्रियां अलग-अलग तरह की साड़ियां। कमीज और पतलून को पुरुषों के लिए तथा स्त्रियों के लिए साड़ी अनिवार्य बनाकर राज्य पुरुषों के लिए आधुनिकता और महिलाओं के लिए परंपरा को अनिवार्य बना रहा है। बेशक, कॉरपोरेट दुनिया पुरुषों को जीन्स तथा टी-शर्ट या जो कुछ 'अनौपचारिक' कहा जाए, उसे पहनने की अनुमति नहीं देता, क्योंकि वह यह जताना चाहता है कि पुरुषों की आधुनिकता कॉरपोरेट शिष्टाचार में लिपटी है। यहां शिष्टता का अर्थ केवल साफ-सुथरा और शालीन नजर आना नहीं है बल्कि इसका मतलब है बिना शर्त व बिना प्रश्न किए सत्ता के निर्देशों का अनुपालन। अतः पुरुष शिक्षकों को आधुनिक 'दिखाई' तो देना है, पर उन्हें अपने कृत्यों में विद्रोही नहीं होना होता है।

साड़ी पहनी स्त्री एक स्नेहमयी मां की छवि उभारती है और हमारे सांस्कृतिक संदर्भ में एक 'अच्छी महिला' की। शिक्षिका के पेशे का एक अभिन्न अंग है मातृवत् होने का विचार। साड़ी पहनना अनिवार्य बनाकर राज्य शिक्षिकाओं पर धात्री माता होने की पहचान आरोपित करता है। ऐतिहासिक दृष्टि से महाराष्ट्र की शिक्षिकाओं की प्रथम पीढ़ी विधवाओं, तलाकशुदा तथा अविवाहित महिलाओं की थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में आर्थिक बाध्यताओं ने उच्च जाति की मध्यवर्गीय स्त्रियों को पहले शिक्षा पाने और तब शिक्षिकाओं के रूप में काम करने के लिए 'सार्वजनिक' होने पर मजबूर किया। हालांकि ऐसी स्त्रियों को पुरुषों के साथ मिलने-जुलने से पूरी तरह रोकना असंभव था, फिर भी उच्च जाति के पुरुषों ने इस संभावना को कम करने के लिए उनके दिखाव-बनाव को नियमित करने की चेष्टा की। बालिकाओं को नौ-गज साड़ी पहनने पर और 1930 से 1950 के दशक की मराठी साहित्य की पात्र काकूबाई (अनाकर्षक, बुद्धू महिला) के रूप में प्रस्तुत करने पर बाध्य किया गया। नौ-गज की साड़ी 'सुसंस्कृत' महिला की छाप बनी। पिछली शताब्दी के मध्य तक जो उच्च जातीय शहरी स्त्रियां 5-6 गज की साड़ियां पहनने लगीं, उन्हें 'नीच', 'अयोग्य', 'फैशन परस्त' माना जाता था। जबकि नौ-गज की साड़ी में लिपटी स्त्री को 'पवित्र', 'सदाचारी' तथा 'पारिवारिक स्त्री' माना जाता था। मेम साहब (अंग्रेज महिला) के आगमन के बाद उच्च जातीय पुरुष महिलाओं के लिए उचित वस्त्रों की चर्चा करते तथा उसे परिभाषित करते मिलते हैं। जब स्त्रियों ने पहली बार पेटिकोट तथा ब्लाउज पहनना प्रारंभ किया तो उनकी आलोचना तथा उपहास स्वरूप उन्हें मेम साहबों की नकल करते घोषित किया गया।[7] परन्तु पिछली शताब्दी के मध्य तक उसी तरह के ब्लाउज व पेटिकोट 'वर्ग' तथा 'प्रतिष्ठा' व 'शुचिता' के संकेत बन गए। अर्थात् पुरुषों द्वारा वेशभूषा को लागू करना स्पष्टतः स्त्रियों की यौनिकता को नियंत्रित करने का ही कृत्य था।

शिक्षा का क्षेत्र महिलाओं की यौनिकता को नियंत्रित करने की विचारधारा तथा गणवेश के बीच एक मजबूत रिश्ते का गवाह रहा है। शिक्षा के डिप्लोमा (डी.एड.) वाले कॉलेजों की छात्राओं को अब तक सफेद साड़ी, सफेद ब्लाउज पहनने पर बाध्य किया जाता है, जो रंग मानक रूप में वैधव्य का प्रतीक है। अगर हम याद करें कि महाराष्ट्र की शिक्षिकाओं की पहली पीढ़ी बाल विधवाओं, परित्यकताओं तथा अविवाहित स्त्रियों की थी और इसे चयनित श्वेत रंग से जोड़ें जो 'संयम' का रंग है और जो गत् 100 वर्षों से शिक्षक-छात्राओं के गणवेश का रंग बना रहा है, यह स्पष्ट लगता है कि जो विचारधारा गणवेश को निर्देशित कर रही है वह दरअसल महिलाओं की यौनिकता पर पितृसत्तात्मक नियंत्रण की ही है।

पुरुष ने सदा ही स्त्रियों की शुचिता तथा उनके सामाजिक दर्जे को तय करने वाले मानदंडों को बनाने का विशेषाधिकार स्वयं के पास रखा है। यों साड़ी परंपरा को आगे ले जाने, उसे संरक्षित रखने और पुनरूत्पादित करने का वाहन बन गई है। 'संस्कृति' को आगे ले जाना और उसका संरक्षण स्त्रियों के लिए उतना ही स्वाभाविक माना जाता है जितना जैविक प्रजनन का कृत्य।

6. लॉन एम., रिफॉर्मिंग इंग्लैंड : द डिक्लाइन ऑव मॉडर्न टीचर एण्ड द राइज ऑव फ्लैक्सिबल वर्कर, टैडिकल टीचर, संख्या 48
7. चैटर्जी पी., 'द नैशनलिस्ट' रेसोल्यूशन ऑव विमेन्स क्वेशचन जो संगारी, के. तथा वैद, एस. (संपादित) रीकास्टिंग विमेन : एसेज इन इंडियन कॉलोनियल हिस्ट्री, जुबान, नई दिल्ली, 2006

शिक्षकों की आलसी, अक्षम, पाखंडी तथा समाज पर बोझ होने की छवि भारतीय सामाजिक मानसिकता का समेकित भाग बन चुका है। शिक्षा की घटती गुणवत्ता, खासकर सरकारी स्कूलों में, को ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है जिस पर दोष आरोपित किया जा सके। शिक्षक आसान-सा लक्ष्य है।

शिक्षिका से दोहरी भूमिका निभाने की उम्मीद रखी जाती है। तो यह कि वह संस्कृति की वाहक बनेगी और दूसरे वह छात्रों के समक्ष, खासकर बालिकाओं के समक्ष, एक आदर्श भी प्रस्तुत करेगी।

शिक्षकों को गणवेश पहनने की बाध्यता डालते समय कोलकाता उच्च न्यायालय के फैसले की पूरी तरह उपेक्षा की गई। अदालत ने सरकार द्वारा चलाए जा रहे या सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों में वेशभूषा संहिता लादने की मनाही की थी। न्यायाधीश जयंत विश्वास ने शैक्षणिक संस्थाओं के प्रबंधकों की वेशभूषा संबंधी संहिता लागू करने, खासतौर से महिलाओं पर इसे लागू करने की वृत्ति की निंदा की थी।[8]

1990 के दशक के बाद की दुनिया में शिक्षकों पर बाजार का हमला अधिक सघन हुआ है। 'बाजार' के सहयोगियों ने शिक्षकों, खासकर सरकारी स्कूलों के शिक्षकों की निंदा प्रारंभ की और उनके पेशे की प्रतिष्ठा पर हमला किया। ढांचागत समझौतों वाले कार्यक्रमों ने, जो पैरा शिक्षकों जैसी योजनाओं के मार्फत लागू किए गए, शिक्षकों को ऐतिहासिक रूप से निम्न दर्जे को और भी नीचा किया। 'बाजार' ने शिक्षा की गुणवत्ता को केवल परीक्षाओं में छात्रों के प्राप्तांकों के संदर्भ में परिभाषित कर शिक्षकों से उनके कौशल तक छीन लिए (उन्हें 'डीस्किल' कर दिया)। ऐसे प्रस्ताव सामने आए जिनमें छात्रों के खराब प्रदर्शन के लिए शिक्षकों को प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार घोषित किया गया और यों शिक्षा को एक 'संस्कृतिरोधी' (कल्चरप्रूफ) गतिविधि बना डाला गया और शिक्षण के प्रमुख स्वार्थों को सामाजिक निगरानी से भी मुक्त कर दिया गया। इस संदर्भ में दावा किया जा रहा है कि सरकार द्वारा गणवेश जैसे सतही बदलाव शिक्षकों को नया दर्जा तथा प्रतिष्ठा देंगे। यह तथ्य दर्शाता है कि सरकार शिक्षकों के दर्जे और उनकी पेशागत प्रतिष्ठा के प्रति पूर्णतः उदासीन है।

इस प्रकार की बाध्यता का एक दूसरा पक्ष है शिक्षकों की स्वतंत्रता पर हमला करने की विचारधारा। यह हमला उनके अविश्वास के प्रसार द्वारा तथा उनकी पेशेगत स्वायत्तता पर नियंत्रण द्वारा किया जा रहा है। महाराष्ट्र सरकार ने हाल में शिक्षकों के लिए एक आदर्श आचार संहिता की कल्पना की है। इसमें प्रस्तावित किया गया था कि उन पर भाषण देने, कविताएं रचने, लेख लिखने तथा स्टॉक बाजार निवेश करने, अगर प्रथम वैवाहिक साथी जीवित हो तो किसी तलाकशुदा व्यक्ति से विवाह करने, आदि-इत्यादि पर पाबंदी लगाई जाए।[9] साहित्यिक तथा राजनीतिक मामलों के प्रख्यात टीकाकार, जी. पी. देशपांडे ने इस प्रस्ताव को जन सामान्य उदाहरण बताया जो प्रदेश में व्याप्त है।[10] शिक्षकों पर अविश्वास और शंका ऐसा विचार नहीं है जो केवल सरकार तथा बाजार के लिए सुविधाजनक हो। कई बार प्रगतिशील शिक्षाविद् भी शिक्षकों को ऐसे ढांचों में बंधे कार्यक्रमों को लागू कर सकते हैं और जिनमें स्वतंत्र चिंतन की लियाकत नहीं है (हमारी स्कूली व्यवस्था में पाठ-नियोजन तथा उसे क्रियान्वित करने की प्रथा को याद करें)। 2005 में जब राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा ने बालक को ज्ञान का निर्माता तथा शिक्षक को एक सक्रिय सहायक के रूप में चित्रित किया तो राजनैतिक रूप से प्रगतिशील अकादमिकों तथा शिक्षक-शिक्षाविदों को भी धक्का लगा और वे खफा हुए। प्रोफेसर कृष्ण कुमार के

8. 7 मई 2010, को हुगली जिले में सिंगुर स्थित गोपाल मोहिनी मलिक बालिका हाई स्कूल के विरुद्ध मामले में एक युगान्तरकारी फैसला अदालत ने सुनाया। यह फैसला http://www.dnaindia.com/india/report_no-dress-code-for-teacherscalcuttahighcourt_1380398, पर उपलब्ध है जिसे 2 फरवरी 2011 को एक्सेस किया गया।
9. सकाल (मराठी समाचार पत्र), पुणे, 21 जून 2008
10. जीपीडी, ''इन केस यू वॉन्ट टू टीच'', इकोनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, खण्ड 43, संख्या 19, पृष्ठ 8-9, मई 10.16.2008

अनुसार यह नाराजगी शिक्षकों में आस्था की कमी, खासकर चिंतन कर पाने और निर्णय ले पाने की उनकी क्षमता में अविश्वास के कारण उपजी थी।[11]

क्योंकि गणवेश की बाध्यता केवल सरकारी स्कूलों के शिक्षकों के लिए है और निजी शालाओं के शिक्षकों के विषय में कुछ भी नहीं कहा गया है, यह स्पष्ट होता है कि सरकार निजी स्कूलों की गुणवत्ता पर प्रश्न नहीं उठाना चाहती। मोटे तौर पर सरकार तथा उसके 'पिघलती मोम से गढ़े प्रजातंत्रवादी'[12] मानते हैं कि निजी शालाओं का शिक्षण गुणवत्ता युक्त है जबकि सरकारी स्कूलों में इसका अभाव है। इस अभाव का दोष सरकारी स्कूलों के शिक्षकों पर मढ़ा जाता है। इस तथ्य पर कोई प्रश्न नहीं उठाया जाता है कि निजी शालाओं की प्रकृति यह रहती है कि वे 'गुणवत्ता को कार्यात्मक' के बराबर मान लेते हैं। शिक्षकों को गणवेश पहनने पर बाध्य कर महाराष्ट्र सरकार न केवल शिक्षकों के प्रति सामान्य अविश्वास को मजबूत कर रही है, बल्कि निजी शिक्षा 'मुहैया करवाने वालों' की राह भी पाट रही है।

शिक्षकों की आलसी, अक्षम, पाखंडी तथा समाज पर बोझ होने की छवि भारतीय सामाजिक मानसिकता का समेकित भाग बन चुका है। शिक्षा की घटती गुणवत्ता, खासकर सरकारी स्कूलों में, को ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है जिस पर दोष आरोपित किया जा सके। शिक्षक आसान-सा लक्ष्य है। शिक्षक सरकारी शिक्षा व्यवस्था का नजर आने वाला चेहरा है, अतः समाज उस पर कड़ी नजर भी रखता है। शिक्षा व्यवस्था को गुणात्मक व संख्यात्मक रूप से कार्यात्मक बनाए रखने की जिम्मेदारी शिक्षक की ही होती है। ऐसे में उसकी क्षमता वर्धन के बदले उसका अवपीड़न, सही शिक्षण-प्रशिक्षण के बदले अविश्वास को उपरोक्त लक्ष्य हासिल करने का उपाय मान लिया गया है। भारत में शिक्षा की गुणवत्ता संबंधी चर्चाओं में हमेशा शिक्षक के उत्प्रेरणा पर सवाल उठाए जाते हैं, उसके बौद्धिक सबलीकरण पर कभी नहीं, मानो उत्प्रेरणा, कुशलता का एवजी हो। शायद यह सच भी हो कि कुछ शिक्षक अपनी जिम्मेदारियों से कन्नी काटते हैं, परन्तु यह भी सच है कि भारत में निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र का कोई भी हिस्सा इस वृत्ति से मुक्त नहीं है। जब भी हम कुछ शिक्षकों के गैर-जिम्मेदाराना दृष्टिकोण की चर्चा करें तो यह न भूलें कि यह विशाल प्रणाली लाखों-हजारों सहकारी, मेहनती और कुशल शिक्षकों के सहारे ही चलती है। अगर गणवेश कार्य को सुधार सकता तो फिर पुलिस की 'कार्य संस्कृति पर या फौजियों के विद्रोह की चर्चा दुनिया के किसी भी देश में नहीं होती।'

इस देश में शिक्षा की हालत शिक्षकों के गणवेश से नहीं बदलेगी, बदलाव तो दरअसल व्यवस्थात्मक तथा सामाजिक दृष्टिकोण में लाने की आवश्यकता है। नजरिए में बदलाव के बिना अनिवार्य गणवेश जैसे उपाय शिक्षकों के प्रति अविश्वास की संस्कृति को ही मजबूत करेंगे। हमें प्रोफेसर हेनरी जीरू के कथन को भूलना नहीं चाहिए : ''शिक्षकों को उदासीन तकनीकविदों की तरह देखने के बदले हमें उन्हें व्यस्त बुद्धिजीवियों के रूप में देखना चाहिए जो कक्षा के इस वातावरण का निर्माण करते हैं जो ज्ञान, कौशल तथा प्रश्न करने की संस्कृति उपलब्ध करवाते हों। छात्रों को इन सबकी आवश्यकता होती है ताकि वे अपने अतीत से आलोचनात्मक संवाद में भागीदारी कर सकें, सत्ता से सवाल कर सकें, मौजूद सत्ता से संघर्ष कर सकें और स्वयं को सक्रिय तथा कटिबद्ध नागरिक बनाने की तैयारी कर सकें। ऐसे नागरिक जो सर्वहित के स्थानीय, राष्ट्रीय तथा वैश्विक मसलों से सरोकार रखते हों।''[13] शिक्षकों के पेशे के प्रति ऐसा दृष्टिकोण आलोचनात्मक शिक्षा के सार्वजनीकरण की कुंजी है, जो एक सशक्त लोकतंत्र की दिशा में ले जाता है। ◆

(यह लेख संक्षिप्त एवं संपादित रूप में 'कन्टम्प्रेरी एज्युकेशन डायलॉग' खण्ड-19, अंक-1, जनवरी, 2012 में प्रकाशित हो चुका है।)

11. कुमार, के., 'लेट अस ऑल ब्लेम द टीचर, अ पिडेगॉगस् रोमैन्स-रिफ्लेक्शन्स ऑन स्कूलिंग, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2008
12. 26 नवम्बर 2008 में दक्षिण मुम्बई में हुए आतंकवादी हमलों के बाद, लोगों ने, जिनमें से अधिकांश दक्षिण मुम्बई के निवासी थे, एक विरोध मार्च किया जिसमें वे जलती मोमबत्तियां तथा 'सुरक्षा नहीं तो कर नहीं' जैसे नारे लेकर निकले। 'पिघलती मोम प्रजातांत्रिक' का जुमला इस खोखले भाव को समेटने की चेष्टा करता है। ऐसे विरोध प्रदर्शन सुझाते हैं कि लोकतंत्र में केवल करदाताओं को ही कुछ कहने का अधिकार है।
13. जीरू, एच., 'इन डिफेंस ऑव पब्लिक स्कूल टीचर्स इन अ टाइम ऑव क्राइसिस', (वेब पत्रिका), 14 अप्रैल 2010। यह पत्रिका http://www/truthout.org/indefense-public-schoolteachers-a-time-crisis58567, पर उपलब्ध है, जिसे 28 जनवरी 2011 को एक्सेस किया गया।